• ओं गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविम् •

श्रीगणेश का रहस्य

लेखक : ज्येष्ठ वर्मन

COMPLEMENTARY COPY

प्रस्तावना :

॥ ओ३म् ॥

सम्माननीय विद्वान लेखक श्रीयुत् ज्येष्ठ वर्मन् द्वारा लिखित "श्री गणेश का रहस्य" आद्योपान्त पढ़ा। निस्सदेह लेखक ने विषय का अति सूक्ष्म अध्ययन एवं विषय का स्पष्टीकरण अति उत्तम रीति से किया है। विषय के प्रत्येक पहलू–नाम आदि का–विश्लेषण करते हुए शब्द के मूल को वेदों द्वारा प्रतिपादित कर उसका अर्थ परमेश्वर निश्चय किया है जो हम सबका पथप्रदर्शक–नेता–अग्रणी है उसके गुणों का एक चित्रण ही गणपति का मूर्तरूप है। पौराणिक काल में इसी प्रकार से मूर्तियों का प्रचलन प्रारंभ हुआ जैसे आज भी इसी प्रकार के भाव नित्य प्रति समाचार पत्रों, कारटूनों के रूप में हमारे समक्ष आते रहते हैं प्रभु के उन गुणों युक्त मनुष्य ही समाज व राष्ट्र के नेता का स्थान ग्रहण करने योग्य होता है और सर्व ऋद्धि सिद्धि युक्त राष्ट्र का निर्माण करता है।

आशा है प्रत्येक भाई-बहन पुस्तक का आद्योपान्त अनुशीलन कर गणपति के सत्यस्वरूप को समझ आचरण में लाकर स्वयं उन्नत होगा एवं राष्ट्रोन्नति में भी सहयोग प्रदान करेगा।

विद्वान् लेखक को अनेक धन्यवाद एवं साधुवाद देते हुए उनके सद्प्रयत्न की सफलता के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

भगवती प्रसाद गुप्त
प्रधान

मुंबई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानंद भवन
ज्युबिली बाग, बड़ौदा–१

: प्रकाशकीय :

जिस बात को एक लेखक हजारों शब्दों द्वारा भी पूरी तरह से नहीं समझा सकता है, उसको एक चित्रकार एक छोटे चित्र के द्वारा अच्छी तरह से समझा सकता है। यह है चित्रकला की महिमा। इस दृष्टि से देखी जाय, तो पता चलता है कि गजानन गणेश किसी श्रेष्ठ कलाकार की एक अद्भुत कृति है। यह एक नहीं, अनेक गंभीर विषयों को सम्मिलित रूप में प्रकट करने वाला कलात्मक प्रतीक है। भारतीय देवी-देवताओं के सम्बन्ध में मान्य लेखक का विशेष अध्ययन है। श्री गणेश के विषय पर सन १९७७ में इनका भाषण आकाशवाणी, मुम्बई केन्द्र से प्रसारित हुआ था। महाराष्ट्र और कर्णाटक में इस विषय पर इनके अनेकों प्रवचन हुए। न केवल जनसाधारण अपितु गण्यमान्य विद्वानों ने भी लेखक की भारतीय देवी देवताओं के रहस्यों को प्रकट करने की इस शैली की प्रशंसा की है। दिनांक १६, सितंबर १९७७ को 'गणपती चा शोध' (गणेश संकल्पना व स्वरूप यांचे एक दर्शन) इस शीर्षक के साथ मराठी दैनिक नवशक्ति में विशेष लेख के रूप में यह प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष कन्नड मास पत्रिका वेद प्रकाश में श्रावणी विशेषांक में भी इसी विषय पर इनका लेख छप चुका है यद्यपि इस पुस्तक में श्री गणेश के रहस्य पर बहुत संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया है, तथापि स्वाध्यायशील वाचकों के लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

*

ओम्प्रकाश कपूर
अध्यक्ष

विद्यार्य सभा, मुम्बई, १ कलेक्टर कॉलोनी, माहुल रोड़,
चेम्बूर, मुम्बई-४०० ०७४

श्री गणेश का रहस्य

लेखक :—प्रो. ज्येष्ठ वर्मन, (बम्बई)

श्री गणेश को नमस्कार किये बिना हमारे हिन्दू भाई कोई भी शुभ कार्य प्रारम्भ नहीं करते। क्योंकि, इनलोगों का विश्वास है कि अपने कार्य में आनेवाले विघ्नों को दूर करने में वही समर्थ है। कार्य सिद्धि, यानी हर कार्य को सफल बनाने में भी श्री गणेश ही सहायक होता है। इसलिये उसको विघ्नेश्वर और सिद्धि विनायक भी कहते हैं।

लोगों की यह भी मान्यता है कि किसी भी देवता की पूजा तब तक सफल नहीं होती जब तक श्री गणेश प्रसन्न नहीं होता। इसीलिये, चाहे कुल देवता हो या चाहे इष्ट देवता हो, जब किसी देवता की पूजा होती है, प्रारम्भ में श्री गणेश को नमस्कार करना अत्यावश्यक समझा जाता है। इस कारण से, श्री गणेश को हिन्दुओं के देवी देवताओं में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। 'श्रीगणेश' शब्द किसी भी कार्यारम्भ के अर्थ में अब प्रयोग में आचुका है।

श्री भाण्डारकरजी के अनुसार गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रचलन पांचवीं और आठवीं सदियों के बीच में हुआ था। न केवल भारत में, अपितु विश्वभर में उसका प्रचार हुआ है। चीन में कुंग शियांग में सन् ५३१ में बनी गणेश की मूर्ति मिली है। अफगानिस्तान में छठी सदी में बनी संगमरमर की गणेश की मूर्ति उपलब्ध है। कुछ समय पहले, लाओस की सरकार ने गणेश की डाक टिकट निकाली है। न्यूयार्क, टोरेण्टो और जर्मनी में गणेश के प्राचीन मंदिर हैं। नेपाल, तिब्बत, जापान, इण्डोचायना, स्याम, बर्मा, मलाया, जावा, बोर्नियो, सुमात्रा, आदि देशों में भी सदियों पुरानी गणेश की मूर्तियाँ मिली हैं। इसलिये, यदि हम कहें कि श्री गणेश एक विश्वव्यापी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त देवता है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

श्री गणेश, जिसको गणपति भी कहते हैं, उतना ही पुराना है जितना वेद। क्योंकि ऋग्वेद, मण्डल २, सूक्त २३ में गणपति का

वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में भी अध्याय २३, मंत्र १६ में गणपति का वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण, पंचिका १, कंडिका २१ में गणपति की चर्चा है। उसके बाद, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मत्स्यपुराण, शिवपुराण, वराह पुराण' श्री गणेश पुराण, स्कन्द पुराण, आदि पौराणिक साहित्य में भी श्री गणपति की अनेक कथाएँ हैं। महाभारत के आदि-पर्व में भी गणेश का उल्लेख मिलता है। गाणपत्याथर्वणशीर्ष, बृहत् स्तोत्र रत्नाकर, आदि ग्रंथों में गणेश की, नाना प्रकार की स्तुतियाँ हैं। संतज्ञानेश्वर, संत तुकाराम महाराज प्रभृति लोगों ने भी गणेश की स्तुति की है। अर्थात वेदों से लेकर अब तक गणपति की परम्परा अक्षुण्ण रही है।

प्रचार की दृष्टि से यदि हम गणेश को विश्वव्यापी कह सकते हैं, तो स्वरूप की दृष्टि से उसको विश्वरूपी भी कह सकते हैं। क्योंकि, उसके अनेक रूप हैं। इसके यक्षगणपति, पंचानन गणपति, गजानन गणपति, वक्रतुण्ड गणपति, विद्यागणपति, श्वेतगणपति, कृष्ण-गणपति, ऋद्धि गणपति, सिद्धि विनायक, लक्ष्मीगणपति, शक्ति गणपति, नृत्य गणपति, बालगणपति, तरुण गणपति, वीर विघ्नेश, प्रसन्न गणपति, हेरम्ब गणपति, पिंगल, बीज, उच्छिष्ट, हरिद्रा, भुवनेश, ध्वजगणपति, योग गणपति, मूषकवाहन सिंहारूढ, अश्वारूढ' द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, पद्मासीन, नागयज्ञोपवीतधारी, उष्णीषधारी आदि अनेक नामरूप प्रसिद्ध हैं।

जैसे गणेश के रूप अनेक हैं, वैसे ही उसके जन्म से संबंधित कथाएँ भी अनेक हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण बताती है कि पार्वती को कोई पुत्र नहीं था। उसने पुत्र प्राप्ति के लिये, विष्णु की भक्ति की। सनत् कुमार के पौरोहित्य में गंगा के किनारे, पुण्याकरात वृत धारण करके एक वर्ष तक विष्णु की आराधना की। फिर उसको एक पुत्र हुआ। इस नव जात शिशु को देखने के लिये सारे देवता लोग आगये। उनके साथ शनिदेवता भी आगया। विष्णु की भक्ति में, अपनी उपेक्षा करने के कारण क्रुद्ध होकर, शनि की पत्नी ने अपने पति को ही शाप देदिया था। तदनुसार, शनि की दृष्टि पड़ते ही, शिशु का सिर कट गया। तब विष्णु ने पुष्पक भद्र नदी तटपर सोते हुए एक हाथी का

सिर काटकर उस शिशु की गर्दन में बिठा दिया। इस कारण से पार्वती का पुत्र गजानन बन गया। एक बार परशुराम शिव से मिलने गया। द्वार पर खड़े हुए गणेश ने परशुराम को घर के अन्दर आने नहीं दिया। क्रोध से परशुराम ने अपने परशु से गणेश का एक दांत ही तोड़ दिया। तब से गणेश एकदंत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मत्स्य पुराण के अनुसार, पार्वती ने अपने शरीर के मैल से एक मूर्ति बनायी। और उस मूर्ति में प्राण भर दिया। इस प्रकार गणेश की उत्पत्ति हुई। यह गणेश बदसूरतवाला था। उसका सिर हाथी जैसा था। पेट भी बहुत बड़ा था।

शिवपुराण में लिखा है कि गणेश ने शिव को अपने घर के अन्दर आने नहीं दिया। क्रोध में आकर शिवने गणेश का सिर काट दिया। पार्वती के रोने पर, शिव ने किसी हाथी का सिर लाकर गणेश के सिर के स्थान पर रख दिया।

वराहपुराण की कथा और भी विचित्र है। उसमें लिखा है कि शिवजी के मुख के तेज से गणेश पैदा हुआ। वह बालक बड़ा सुन्दर और तेजस्वी था। पार्वती ने सोचा कि इस बालक के कारण उसके अपने मन में कभी न कभी काम विकार उत्पन्न हो सकता है। इस-लिये उसने गणेश को शाप देकर बदसूरत बना दिया। शिवजी ने गणेश को आशिर्वाद देकर देवताओं का विघ्न नाशक बना दिया।

श्री गणेश पुराण की कथा, इन सबसे नितांत भिन्न है। इस पुराण के अनुसार, गणपति अदिति का बेटा था। अदिति की प्रार्थना सुनकर, स्वयं श्री महागणपति ने उसके गर्भ में जन्म लिया था। वह सुन्दर था, तेजस्वी था। भ्रुशुंडी नामक एक ऋषि गणेश का भक्त था। वह बडा ही कुरूप था। उसके बड़े बड़े कान थे। नाक भी काफी लंबी थी। दांत भी बड़े कराल थे। पेट भी बहुत बड़ा था। मन्दार और शमी नामक किन्नर दम्पति भी गणेश के भक्तों में से थे। एक बार भ्रुशुण्डी को सामने से जाते हुए देखकर किन्नर दम्पती ने हँस दिया। इससे अपमानित होकर, भ्रुशुण्डी ने उनको शाप दे दिया। इस शाप के कारण मन्दार और शमी नाम के ये किन्नर, वृक्ष

बन गये। ये भी गणेश के भक्त थे। इसलिये अब भी मन्दार और शमी गणेश को बड़े प्यारे हैं। भ्रुशुण्डी को दुःखी देखकर, गणेश ने उसको आश्वासन दिया कि भविष्य में वह अपने भक्तों के समक्ष भ्रुशुण्डी के ही रूप में प्रकट होगा। इसलिये गणेश का वह विकृत रूप प्रसिद्ध हुआ।

स्कंद पुराण की कथा इससे भी भिन्न है। उसमें लिखा है कि वरेण्य नामक एक राजा था। उसकी पत्नी के गर्भ में विघ्नेश्वर का जन्म हुआ। उसके चार भुजायें और हाथों में आयुध थे। रानी ने सोचा कि अपने गर्भ में कोई अरिष्ट पैदा हुआ है। वह बहुत रोने लगी। राजा वरेण्य ने सेवकों से उस बच्चे को दूर किसी सरोवर में फेंक देने के लिये कहा। सेवकों को बच्चे को मारने का दिल नहीं हुआ। उन्होंने उस बच्चे को जगल में पार्श्वमुनि के आश्रम के पास छोड़ दिया। स्नान के लिये जाते समय, पार्श्व मुनिने उस बच्चे को देखा। उसने बच्चे को उठाकर अपने आश्रम में लेजाके दीपवत्सला नामक अपनी पत्नी के हाथ में दे दिया। उसकी कोई संतान नही थी। इसलिये बड़े हर्ष के साथ उसने उस बच्चे को पाला। इस तरह विघ्नेश्वर की दो मातायें हुई।

जिस प्रकार गणेश की कहानियाँ बड़ी विचित्र हैं, उसी प्रकार उसकी स्तुतियाँ भी बहुत विचित्र हैं। श्री गाणपत्यथर्वण शीर्ष में इस प्रकार की स्तुति है—

ओं नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव खल्विदं ब्रह्मासि।...... त्वं ब्रह्मात्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वामिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भवः स्वरोम्॥

इसका अर्थ है कि गणपति सृष्टि करनेवाला, उसका धारण करनेवाला, और संहार करनेवाला परब्रह्म परमात्मा है। उसी के ही विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, भू, भुर्वः, स्वः, ओम् आदि अनेक नाम हैं। यह वेदोक्त परमेश्वर के वर्णन के अनुकूल है।

किन्तु वहीं पर ऐसी बातें भी कही गयी हैं जिससे लगता है कि गणपति कोई शरीर धारी विचित्र देवता है या कोई काल्पनिक मूर्ति है, अथवा कोई मनुष्य विशेष है। देखो--

एकदंताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि॥ तन्नोदंती प्रचोदयात्॥ एक दतं चतुर्हस्तं पाशमंकुशधारिणम्॥ रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥ रक्तं लंबोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्॥ रक्तगंधानुलिप्तांगं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥

...................नमोव्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्ते अस्तु लंबोदरायैकदंताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्री वरदमूर्तये नमः॥

इसमें गणपति को एकदांतवाला, टेढ़ा मुंहवाला चार हाथवाला, हाथों में पाश, अंकुश और दंत धारण करनेवाला, मूषक ध्वजवाला, लालरंगवाला, बड़ा पेटवाला, बड़े कान और लाल कपड़ेवाला, लाल चन्दन से लिप्त, लाल पुष्पों से पूजित कोई विचित्र देवता बताया गया है। और भूतप्रेतादि समूह के नायक तथा शिव का बेटा भी कहा गया है किन्तु यह तो परमात्मा के लक्षण नहीं है।

मयूरेश्वर स्तोत्र में "महेशादि देवैः सदा ध्येय पादम्" यानी, महेश आदि देवतालोग (प्राचीन काल के विद्वानलोग) भी उसका ध्यान करते थे, ऐसा लिखा गया है। इसका तात्पर्य है कि गणपति महेश आदि देवताओं से पहले भी था। जिसकी ये लोग भी उपासना करते थे, वह परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? किन्तु, दूसरे एक गणपति स्तोत्र में लिखा है कि "भवगिरि नाशं मालती तीर वासम्" यानी, गणपति मालती नदी के किनारे रहता था। यह अवश्य कोई विद्वान होगा। लेकिन एक पारायण श्लोक में लिखा है "वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभा" यहाँ वर्णित करोड़ों सूर्यो के समान प्रकाशमान, तो परमात्मा ही है। लेकिन वक्रतुण्ड महाकाय आदि विशेषण परमात्मा के नहीं हो सकते। क्योंकि. वह अकाय अर्थात पंचभूतात्मिक शरीरवाला नहीं है। उसका आँखों से देखने योग्य रूप भी नहीं हैं।

श्री गरोश पुराग में ये श्लोक मिलते हैं—

> सिंहारूढो दशभुजो कृते नाम्ना विनायकः ।
> तेजोरूपी महाकाय सर्वेषां वरदो वशी ॥

> त्रेतायुगे बर्हिरूढः षड्भुजो ऽप्यर्जुनच्छविः ।
> मयूरेश्वर नाम्ना च विख्यातो भुवनत्रये ॥

> द्वापरे रक्तवर्णोऽसावाखुरूढश्चतुर्भुजः ।
> गजानन इति ख्यातः पूजितः सुरमानवैः ॥

> कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो द्विहस्तवान ।
> धूम्रकेतुरिति ख्यातो म्लेच्छानीक विनाशकृत् ॥
> (ग्रध्याय १, श्लोक १८, १९, २०, २१)

ग्रर्थात कृतयुग में गरोश को विनायक कहते थे। उसके दस भुजायें थी। वह सिंह पर सवार था। वह तेजरूपी था। त्रेतायुग में वह मयूर पर सवारी करता था। उसके छः भुजायें थी। उसका रंग सफेद था। ग्रौर उसका नाम मयूरेश्वर था। द्वापर युग में वह मूषक पर बैठता था। उसके चार भुजायें थी उसका रंग लाल था। ग्रौर उसको गजानन कहते थे। कलियुग में उसके दो ही हाथ रह गये। उसका रंग भी काला होगया। उसका वाहन घोड़ा बन गया था। वह म्लेछों को मारता था। उसका नाम धूम्रकेतु था। इसतरह युग-युग में बदलनेवाला यह गरापति परमात्मा तो हो ही नहीं सकता। ग्रवश्य यह कोई काल्पनिक देवता होगा। इस वर्रान को हम वाच्यार्थ में ले नहीं सकते।

महाभारत के ग्रादि पर्व में भी गरोश का उल्लेख ग्राता है। यथा—

> सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत्क्षणमास्ते विचारयन् ।
> तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान बहूनपि ॥
> (ग्रध्याय १, श्लोक ८३)

ग्रर्थात, व्यासजी ने जब महाभारत काव्य रचना करने की बात सोची, उन्होंने लेखन कार्य के लिये उस समय प्रसिद्ध लिपिक गरोश को याद किया। लेकिन गरोश ने एक शर्त रखी कि वह लिखते समय बीच में कहीं रुक नहीं सकता। यदि एक बार रुक गया फिर वह लेखन कार्य को ग्रागे नहीं बढ़ा सकता। बिना रुके इतना बड़ा काव्य लिखवाना व्यासजी के लिये भी कठिन था। उन्होंने एक उपाय सोचा। ग्रौर उसके ग्रनुसार उन्होंने भी एक शर्त रखी। व्यासजी ने गरोश से वचन मांगा कि वह बिना समझे कोई भी श्लोक न लिखे। गरोश ने मान लिया। व्यासजी बीच बीच में बड़े क्लिष्ट ग्रर्थवाले श्लोक सुनाने लगे। गरोश को उन श्लोकों का ग्रर्थ जल्दी समझ में नहीं ग्राता था। जब वह स्वयं लिखना बंद करके श्लोकों के ग्रर्थ पर विचार करते हुए बैठता था, तब व्यासजी को नये नये श्लोकों की रचना करने का समय मिलता था। इस तरह गरोश ने व्यासजी के लिये महाभारत काव्य लिखने का कार्य किया। यह गरोश भी सर्वज्ञ परमात्मा नहीं हो सकता है। जिस परमात्माने ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया, इस महान सृष्टि की रचना की, जिसकी कृपासे व्यास प्रभृति ऋषि मुनि प्रख्यात हुए, उसको व्यासजी के श्लोकों के ग्रर्थ समझने में कठिनाई होती थी, इस बात को कौन मान सकता है? वह सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी इस क्षुद्र मानुषी कार्य में कैसे लग सकता है? इससे इस गरापति को कोई मनुष्य विशेष ही मानना उचित लगता है।

उपरोक्त समस्त वार्ता से यह सिद्ध हो जाता है कि गरापति एक नहीं ग्रनेक हैं। इसके वर्रान में ग्राध्यात्मिकता के साथ साथ साम्प्रदायिकता, कल्पना, इतिहास, ग्रालंकारिक वर्रान ग्रादि का मिश्ररा भी है। इसलिये गरापति को पहचानना कठिन प्रतीत होता है। किन्तु गरापति की कल्पना के ग्रादि स्रोत वैदिक वाङ्मय का यदि हम ध्यान से ग्रवलोकन करते हैं तो गरापति के रहस्य के बारे में सत्यासत्य का प्रकाश ग्रपने ग्राप हो जाता है।

—: वेदो में गणपति :—

जैसे मैंने पहले बताया, ऋग्वेद ग्रौर यजुर्वेद में गरापति का वर्रान मिलता है। यथा—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविम् । कवीनामुपम श्रस्वतमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ।।

(ऋग्वेद, मंण्डल २, सूक्त २३, मत्र १)

इस मंत्र का देवता ब्रह्मणस्पति है। यानी, मंत्र में प्रतिपादित विषय ब्रह्मणस्पति है। ब्रह्म शब्द के परमात्मा, ब्रह्माण्ड, सूर्य, धन, अन्न, मन, प्राण, वाक्, वेद, यज्ञ, ब्राह्मण, सबसे बड़ा, इत्यादि अर्थ होते हैं। चारों वेदों के विद्वान को भी ब्रह्म कहते हैं। याज्ञिक पुरोहितों में भी एक मुख्य पुरोहित का नाम ब्रह्म है। ब्रह्म के पति ब्रह्मणस्पति हैं। इसलिये ब्रह्मणस्पति शब्द के, मुख्य रूप से, ब्रह्माण्ड, वेद' यज्ञ, अन्न, धन आदि के स्वामी, यह अर्थ होते हैं। अर्थात मुख्य रूप से ब्रह्मणस्पति शब्द का अर्थ परमेश्वर है। यही इस मंत्र का आध्यात्मिक अर्थ है।

यहाँ परमेश्वर के लिये गणों के स्वामी गणपति, कवियों के भी कवि, ज्येष्ठराज, आदि विशेषण आये हैं। गण कहते हैं गणनीय वस्तुओं को, मुख्य अथवा श्रेष्ठ वस्तुओं को तथा प्रजा, समूह, सेना इत्यादि को। इसलिये यहां गणपति शब्द का अर्थ हुआ कि प्रजापति, समस्त विश्व के स्वामी परमेश्वर। परमेश्वर कवियों के भी कवि है। कवि कहते हैं क्रान्तप्रज्ञ, क्रान्तदर्शी, ऋषियों को। परमेश्वर उनसे भी श्रेष्ठ कवि है, सर्वज्ञ है। वेद उसका काव्य है, सृष्टि उसकी रचना है, जिसमें उसकी सर्वज्ञता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। परमात्मा से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। वही हमारा आदर्श है, वही हमारे लिए अनुकरणीय है, वही उपमान के योग्य है। इसलिये उसको उपम कहते हैं। परमेश्वर की ही स्तुति उत्तम होती है। वही अत्यन्त श्रवणयोग्य है, इसलिये उसको श्रवस्तम कहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादि श्रेष्ठ पदार्थों में वही विराजमान है। उसी से प्रकाश को लेकर, ये सारे प्रकाशित होते हैं। इस कारण, परमात्मा को ज्येष्ठराज भी कहते हैं। मंत्र में प्रार्थना की गयी है कि उपरोक्त विशेषणों के द्वारा वर्णित वह परमेश्वर हमारे हृदयों में बसे और हमारी रक्षा करे।

यजुर्वेद का मंत्र भी लगभग इसी प्रकार का है। यथा—

गणांनां त्वा गणपतिं ꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं ꣳ
हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं ꣳ हवामहे वसो मम
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।।

मंत्र का अर्थ है–हे परमेश्वर! हमलोग प्रजा के पालन करनेवाले प्रजापति आपकी उपासना करते हैं। आप ही हमारे सबसे प्रिय पति व राजा हो, विद्या आदि धन के भी आपही स्वामी हो, यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप के अन्दर ही निवास करता है, आप सारे संसार को अपने गर्भ के समान धारण करते हो,। आप जन्मादि दोषों से रहित हो, हम लोग आपको अच्छी प्रकार से समझें और आपकी ही स्तुति करें।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे इति ब्रह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै
बृहस्पति र्ब्रह्मणैवैनं तद् भिषज्यति तथा यस्य स
प्रथश्च ।। नमेति ।। (पंचिका १, कण्डिका २१)

अर्थात, परमात्मा, जिसका वेदों में गणपति, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति इत्यादि विशेषणों के द्वारा वर्णन किया गया है, वह आकाशादि सब पदार्थों में सर्वत्र व्याप्त है। जैसे एक कुशल वैद्य औषधियों के द्वारा रोगी को रोग से मुक्त करता है, वैसे ही वेदों के स्वामी, जगदीश्वर वेद ज्ञान रूपी दिव्य औषधि द्वारा, अज्ञान, अविद्या रूपी रोग से मनुष्यों को मुक्त करता है।

परमेश्वर, जिसको यहाँ गणपति कहा गया है, वेदों में ही उसके सैकड़ों नाम हैं। ये सारे नाम उसके विशेषण हैं। ये उसके भिन्न-भिन्न गुण, कर्म व स्वभाव को बताते हैं। ऋग्वेद का एक मंत्र कहता है कि परमेश्वर की इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान, यम, मातरिश्व आदि नामों से लोग स्तुति करते हैं (ऋग्वेद

१-१६४-४६) । यजुर्वेद का एक मंत्र कहता है कि वह परमेश्वर ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नामों से जाना जाता है (अध्याय ३२ मंत्र १)।

उस परमेश्वर को कोई प्रतिमा नहीं होती है (यजुर्वेद, अध्याय ३२, मंत्र ३) । उसका कोई काय यानी शरीर नहीं है (यजुर्वेद, अध्याय ४०, मंत्र ८) । उसका आँखो से देखने योग्य कोई रूप भी नहीं है (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४/२०) । वह जन्मादि दोषों से रहित है। वह लिंगादि भेद से भी रहित है। वह सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अविकारी, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। इसलिये महादेव और पार्वती का लड़का, गजानन गणपति अन्य कोई है। इस गजानन गणेश का वर्णन वेदों में नहीं है। वेदों में जिस गणपति का उल्लेख है वह परमात्मा है, जिसने महादेव आदि महापुरुषों को और वेद-व्यासादि ऋषियों को भी जन्म दिया है। उसके न कोई पिता है, और न कोई माता, वही सब के माता और पिता है। किन्तु वेदों में ही एक अन्य गणपति का भी वर्णन है। वह है, यज्ञेश्वर अग्नि।

दूसरा गणपति यज्ञेश्वर अग्नि :—ऋग्वेद के उपरोक्त मंत्र (मण्डल २, सूक्त २३, मंत्र १) का देवता ब्रह्मणस्पति है। ब्रह्मणस्पति का अर्थ यज्ञ के स्वामी भी है, और धन के स्वामी भी है। इसलिये इस मंत्र में यज्ञ की महिमा भी प्रकट हो जाती है। यज्ञ की महिमा यजमान में देखी जा सकती है। यही बात यजुर्वेद (अध्याय २३, मंत्र १६) के मंत्र के संबंध में भी कही जा सकती है।

वास्तव में अग्नि ही यज्ञ है। (अग्निह्र्यैव यज्ञो ।।– शतपथ ब्राह्मण ३।२।२।१।१)। और यज्ञ को प्रजापति भी कहते हैं। (एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः।। शतपथ ब्रा. ४।३।४।३) क्योंकि यज्ञ से बादल, बादलों से वर्षा, वर्षा से अन्न, अन्न से प्रजाओं की उत्पत्ति पालन एवं पोषण होता है। (अग्नेर्वै धूम्रो जायते धूम्रादभ्रमभ्राद् वृष्टिः ।। शतपथ ब्राह्मण ।।

हमारे रक्तवर्ण विनायक गणपति की मूर्ति इस यज्ञेश्वर अग्नि

का ही प्रतीकात्मक रूप है। क्योंकि, गणपति को रक्तवर्ण, यानी लाल रंगवाला कहते हैं। अग्नि का भी रंग लाल है। गणपति को लंबोदर कहते हैं। अग्नि भी लंबोदर यानी बहुत खानेवाला है। जल, वायु इत्यादि के पाचन शक्ति सीमित है। किन्तु अग्नि को कितना भी खिलाओ, उसको अजीर्ण होगा नहीं। इसलिये, जलप्रदूषण के जैसे अग्नि प्रदूषण की बातें हम नहीं सुनते। गणेश को वक्रतुण्ड यानी टेढा मुखवाला कहते हैं। अग्नि का मुख भी टेढा ही है। उसकी ज्वाला ही उसका मुख है। कहीं कहीं पंचमुखी गणेश का भी वर्णन आता है। यह पञ्चमुखी गणेश, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ नामक पञ्च महायज्ञ हैं।

गणेश को मूषक ध्वज अथवा धूम्रध्वज भी कहते हैं। अग्नि भी धूम्रध्वज या धूम्रकेतु है। (देखो, ऋग्वेद १।४४।३)। आकृति साम्यता के कारण धूवें को मूषक कहा गया है। गणेश को मूषक-वाहन भी कहते हैं। अग्नि का भी मूषक के साथ सम्बन्ध है। तैत्ति-रीय संहिता में लिखा है कि जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई, उसके ऊपर अग्नि थी। कालक्रमेण वह अग्नि मूषक की तरह पृथ्वी के अन्दर चली गयी। (तैत्तिरीय संहिता १।१।३।३)। महर्षि दयानन्द ने अग्नि शब्द का अर्थ अग्निविद्या, अश्वविद्या, नौ विमानादि यानविद्या बताया है। इसलिये मूषक पृथ्वी पर चलने वाला और मयूर, पृथ्वी और आकाश में चलनेवाला वाहन का भी प्रतीक हो सकता है। गणेश को मयूरवाहन भी तो कहते हैं।

गणेश को द्वैमातुर कहते हैं। क्योंकि उसकी दो मातायें थीं। अग्नि द्विमाता है। (देखो, ऋग्वेद १।३१।२) एक ओर से पृथ्वी और अन्तरिक्ष उसकी दो मातायें हैं। दूसरी ओर दो अरणियाँ जिनको रगड़कर अग्नि पैदा करते हैं, उसकी मातायें हैं।

गणेश को महादेव का बेटा कहते हैं। वेदोंमें सूर्य को महादेव कहा गया है। (देखो, अथर्ववेद, काण्ड १३, सूक्त ४, मंत्र ४)। अग्नि सूर्य से ही उत्पन्न है। स्कन्द, गणेश का भाई माना जाता है। स्कन्द शब्द का अर्थ भी अग्नि होता है (स्कदिर् गतिशोषणे)। वास्तवमें

गणपति गार्हपत्य अग्नि है। और स्कन्द आहवनीय अग्नि है। इस का सम्बन्ध कृत्तिका नक्षत्र से है। इसलिये स्कन्द को कार्तिकेय भी कहते हैं। कृत्तिका में छः नक्षत्र हैं। इसलिये स्कन्द को षण्मुख, षण्मातुर भी कहते हैं। इसका दूसरा नाम कुमार है। यह भी अग्नि का ही नाम है।

गणेशको विनायक कहते हैं। विशेष प्रकारका नायक विनायक है। काठक संहिता में लिखा है। "अग्निवै देवानां सेनानी"। अर्थात् अग्नि देवताओं का सेनानायक है। यजुर्वेद (४०।१६) में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह हमें सन्मार्गमें ले चले।

गणेश को यक्ष भी कहते हैं। यक्ष शब्द का अर्थ पूजनीय अथवा यज्ञ है। (देखो, ऋग्वेद १।३६।६; १।१४२।८)। यक्ष–गणपति की कल्पना का आधार यही है।

गणपति के विभिन्न रूपों में, विद्यागणपति, ऋद्धिगणपति, सिद्धि विनायक, लक्ष्मीगणपति, सरस्वतीगणपति भी शामिल हैं। वेद मंत्र में भी अग्नि से मेधा के लिये प्रार्थना की गयी है। यथा—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य
मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ।। यजुर्वेद ३२। १४।।

मेधा यानी बुद्धि के लिये अग्नि से यह प्रार्थना है। श्रेष्ठ बुद्धि से ही मनुष्य वेदविद्या को ग्रहण कर सकता है, उसकी उन्नति हो सकती है। यही मनुष्य की सबसे उत्तम सिद्धि है। यही सिद्धि-विनायक का रहस्य है। वेद विद्या अथवा वेद वाणी को सरस्वती भी कहते हैं। इसके पति परमात्मा है। उसको तो अग्नि कहते ही हैं। किन्तु यज्ञेश्वर अग्नि से भी विद्या की कामना की जाती है। शायद इस-लिये कि यज्ञ से वेद विद्या की रक्षा और उन्नति होती है।

ऋद्धि कहते हैं समृद्धि को। इसी को लक्ष्मी भी कहते हैं। ऋद्धि गणेश अथवा लक्ष्मी गणेश का अर्थ भी यज्ञ ही है। क्योंकि यज्ञ से सुखसमृद्धि मानी जाती है। भगवद्गीता (अध्याय ३, श्लोक १०)

में यज्ञ को कामधुक् बताया गया है। कामधुक् का अर्थ है जो चाहे सो देनेवाला। यज्ञ-प्रर्थना में भी हम गाते हैं

"कामनायें पूर्ण हों यज्ञ से नर नार की"।।

कहते हैं कि गणेश की एक बेटी भी है। यों तो गणेश के बारे में यह कहानी प्रचलित है कि उसकी शादी ही नहीं हुई। किन्तु, जैसे ऊपर बताया है, उसकी दो दो पत्नियाँ हैं। ऋद्धि-सिद्धि या लक्ष्मी-सरस्वती। इन देवियों का अर्थ मैंने बता दिया है। ये ऐश्वर्य और विद्या के प्रतीक हैं। इसलिये, अब उसकी पुत्री का रहस्य समझने में देर नहीं लगेगी। जिस व्यक्ति के पास यज्ञेश्वर की कृपा से ऋद्धि और सिद्धि, लक्ष्मी और सरस्वती अथवा ऐश्वर्य और विद्या दोनों विद्यमान हैं, स्वाभाविक रूप से उसके घर, परिवार में आनन्द, सुख-संतोष स्थिर होगा। यह सुख संतोष ही संतोषी माता है, गणपति की बेटी है, यानी यज्ञ का फल है। देवी संतोषी माता बिलकुल एक आधुनिक, किसी अर्ध पण्डित को कल्पना है। क्योंकि संस्कृत में संतोषी शब्द स्त्रीलिंग नहीं है। उसका रूप संतोषिणी होना चाहिये था। लेकिन संतोषी माता और देवी बन गयी है। किसी संस्कृत नहीं जाननेवाले पण्डित ने ही इस देवी का प्रचार किया मालूम होता है और यह नितान्त नवीन कल्पना है। किन्तु वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यज्ञ से मनुष्य संतोष प्राप्त कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं।

गणेश को पाप विमोचन करनेवाला बताते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि "सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति (शतपथ ब्राह्मण २।३।१।६)। अर्थात्, अग्निहोत्र के रहस्य को जानकर जो कोई भी व्यक्ति नित्य नियमपूर्वक इस देवयज्ञ को करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता में भी यह बात लिखी है कि जो मनुष्य यज्ञ किये बिना खाता है, वह पाप को खाता है यानी पापी बन जाता है। किन्तु यज्ञ करके खानेवाला सब पापों से मुक्त हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है कि यज्ञ को छोड़कर बाकी सब कर्म मनुष्यों को बन्धन में डालनेवाले हैं। इसलिये मुक्ति के निमित्त भी यज्ञ करना चाहिये। किन्तु

हमारे अल्पज्ञ हिन्दू भाईलोग, यज्ञ नहीं करते । बल्कि, यज्ञ के प्रतीकात्मक चित्र या मूर्ति की पूजा करते हैं। जैसे अग्नि के चित्र या प्रतीक में प्रकाश देने, गरमी पैदा करने, शक्ति देने जैसे गुण नहीं है, इसलिये इसके चित्र या प्रतीक की पूजा करने से हमें प्रकाश भी नहीं मिलेगा, हमारा खाना भी नहीं पकेगा, इसी प्रकार यज्ञ से जो कुछ लाभ बताये गये हैं, वे लाभ विधिपूर्वक यज्ञ करने से ही मिलेंगे यज्ञ के प्रतीकात्मक, या सांकेतिक चित्र या प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करने से कोई भी लाभ नहीं मिलेगा। गणेश के इस चित्र या उसकी प्रतिमा का परमात्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, इस बात को मैने पहले ही बता दिया है।

हर शुभ कार्यारम्भ के पहले लोग गणेश को नमस्कार करते हैं। यह वास्तव में परमात्मा का स्मरण या यज्ञ-कर्म के रूप में होना चाहिये। क्योंकि गणपति का अर्थ परमात्मा और यज्ञ है।

अब गणेश विसर्जन के रहस्य को भी देखिये। वेदों में अनेक स्थानों पर बताया गया है कि अग्नि का घर जल या समुद्र है। "अग्निं समुद्र-वाससम्" यह ऋग्वेद, मण्डल ८, सूक्त १०२, मंत्र ५ का वाक्यांश है। मण्डल १०, सूक्त ४६ के प्रथम मंत्र में अग्नि के बारे में "सीददपामुपस्थे" अर्थात अग्नि जल के गोद में रहती है, ऐसा लिखा है । यह अग्नि का विद्युत् रूप है, जो जल में है। इसी कारण, गणपति, अर्थात जो यज्ञ का पवित्र अग्नि है उसे जल में विसर्जन करनेकी परम्परा चली है। किन्तु हमारे भाईलोग, गणपति की मिट्टी की मूर्ति का जल में विसर्जन करते हैं। यह अज्ञानता की सीमा है। इसमें लोगों का समय कितना नष्ट हो जाता है, धन का कितना अपव्यय होता है । धर्म के साथ, इस मिट्टी की मूर्ति के विसर्जन का कोई सम्बन्ध नहीं। हर काम जिसमें विद्या और बुद्धि का अभाव है, धन और समय का अपव्यय होता है और ढोंग, पाखण्ड चलता है, वह सब अधर्म है, पाप है।

गणेश का महत्व और लोकप्रियता बढ़ानेके लिए वास्तव में यज्ञ का महत्व और उसका प्रचार होना चाहिये था । क्योंकि ऋषियों

ने कहा है कि "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (शतपथ ब्राह्मण १।७।१।५) अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कार्य है।

शक्ति गणेश का रहस्य भी अग्नि है। अग्नि की शक्ति से ही हमारे सब कार्य चलते हैं। बिजली, ऊर्जा आदि इसी के रूप हैं। ऋग्वेद में अग्नि को "सहसस्पुत्र" बताया गया है। अर्थात् अग्नि शक्ति का पुत्र है। तात्पर्य, अग्नि शक्तिशाली है। योगी लोग कहते हैं कि हमारे शरीर के अन्दर मूलाधार चक्र में जो कुण्डलिनी शक्ति है, वह वास्तव में अग्नि ही है। इसीलिये गणपति के लिये कहते हैं कि "त्वं मूलाधा-रस्थितोऽग्निर्नित्यम्" (गाणपत्यथर्वण शीर्ष), अर्थात मूलाधार स्थित् अग्नि गणपति है। यहाँ योग गणपति का रहस्य भी खुल जाता है।

श्री गणेश और वैदिक अर्थतंत्र :— वेद कहता है कि राष्ट्र की ऐश्वर्य वृद्धि के लिये जैसे जल को रोकनेवाले काले बादलों को सूर्य नष्ट करके उस जल का लाभ सबको पहुँचाता है, वैसे ही सम्पत्ति को लोभवशात् जो लोग संग्रह करके रखते हैं और अन्यलोगों को उसके लाभ से वंचित करते हैं, उन लोभी पूंजीपतियों को नष्ट करके, सब को लाभ पहुँचाना चाहिये।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्र हा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ।। ऋग्वेद ८।८९।३।।

क्योंकि लोभी पूंजीपतियों के कारण ही मानव समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न होजाती है। भ्रष्टाचार फैलता है। ये लोभीजन यज्ञ नहीं करते; दान नहीं करते । उनकी सम्पती कई प्रकार के समाज-विरोधी तत्वों को जन्म देती है। इसलिये महाराज मनुने कहा है— अयज्वानां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते (मनुस्मृति अध्याय ११. श्लोक २०) अर्थात्, यज्ञ न करनेवालों का धन आसुर धन है। इसे नष्ट किये बिना प्रजा का कल्याण नहीं होगा। यज्ञ कहते हैं देवपूजा, संगतिकरण और दान को। देवपूजा का अर्थ है विद्वानों का आदर सत्कार, अग्नि-होत्र इत्यादि। संगतिकरण कहते हैं साथ मिलकर उन्नति के पथ पर आगेचलने को। दान का तात्पर्य सुपात्र दान है। वेदों के विद्यार्थि

वेदों के प्रचारक, विधवा, रोगी, अनाथ बच्चे-ये सारे दान के योग्य हैं। इन की सहायता करना यज्ञ है। इसी तरह, राष्ट्रकार्य के लिये कर देना भी यज्ञ है। ऐसे यज्ञ न करनेवालों का धन ही आसुर धन अथवा काला धन है। यह राष्ट्र को खानेवाला है, दुर्बल बनाने वाला है। अतः इसको 'आखु' या मूषक कहते हैं। राष्ट्रनिर्माण यज्ञ में इसकी आहुति होनी चाहिये —

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।
एष ते रुद्र भाग ऽ आखुस्ते पशुः ॥ यजुर्वेद ३।५७॥

श्री गणेश की मूर्ति हमें इसी बात की याद दिलाती है।

यज्ञ का और भी एक रहस्य है। यजमान पुरुषार्थ करके जो द्रव्य लाता है, उसकी आहुति देते समय '.........स्वाहा। इदं न मम' कहता है। इसका अर्थ है 'यह मेरा नहीं।' स्वार्थ और अहंकार अथवा अभिमान को यहाँ त्यागना पड़ता है। फिर अग्नि देवता भी कहता है कि इदं न मम। वह अपने पास कुछ भी नहीं रखता। आहुति में पडे द्रव्यों को सूक्ष्म रुप में वायुमण्डल में अन्य देवताओं को पहुँचाता है। हजारो प्राणियों को लाभ पहुँचाता है।

वेद कहता है 'शतहस्त समाहर। सहस्र हस्त संकिर'। (अथर्ववेद ३।२४।५)। सौ हाथों से संग्रह करो और हजारों हाथों से वितरित करो। इसका तात्पर्य है, जितने उत्साह के साथ हम संग्रह करते हैं उसके दस गुना अधिक उत्साह के साथ उसका सबको लाभ पहुँचाना चाहिये। यह है वैदिक अर्थतंत्र का मूलभूत सिद्धान्त। गणेश की मूर्ति इस का प्रतीक है।

तीसरा गणपति गणतंत्र में गणनायक :— वेदों में विद्वान्-ब्राह्मणों को अग्नि कहा गया है। क्योंकि अग्नि शब्द का अर्थ अग्रणी यानी आगे रहनेवाला, आगे चलनेवाला, नेता, सेनापति, प्रमुख व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त, जैसे अग्नि में प्रकाश देने का गुण है, वैसे ही आप्त विद्वान् ज्ञान का प्रकाश देते हैं और लोगों की बुद्धि को भी

प्रकाशित करते हैं। जैसे अग्नि अपने प्रकाश से अंधकार को मिटाती है वैसे ही आप्त विद्वान्, लोगोंके अज्ञान को नष्ट करने का कार्य करते है।

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ यजुर्वेद २९।२५॥

अर्थात्, जैसे अग्नि दीपादि के रूप में हमारे घरों को प्रकाशित करती है, वैसे ही धार्मिक विद्वान भी अपने कुल, समाज, राष्ट्रको ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। इसलिये उनको अग्नि कहते हैं। ये सबके साथ मित्रता के साथ व्यवहार करते हैं। ये कवि हैं, जातवेद हैं। अर्थात् ये मेधावी और ज्ञानी हैं। ये प्रचेता भी हैं यानी बडे बुद्धिमान भी हैं। किन्तु ये दूत भी हैं। दूत शब्द का वैदिक अर्थ है, "यो दुनोति, तापयति दुष्टान्सः" यानी, जो दुष्ट, धूर्त, कुटिल लोग हैं उनको दुःख देनेवाला उनको नष्ट करने का प्रयास करनेवाला। इस प्रकार, अग्नि गुण सम्पन्न विद्वान हो दूत है। जिसमें यह गुण नहीं है, वह विद्वान्, किस काम का? (देखो, दयानन्द भाष्य, यजुर्वेद २९।२५)

एक अन्य मंत्र कहता है —

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभि शस्तिमरातिम् (अथर्व वेद ३।१।१)

अर्थात् लोगों को सताने वाले, असामाजिक, राष्ट्रविरोधी, धर्मविरोधी तत्व, मानव समाज के शत्रु, स्वार्थी कुटिल, लोभीजनों को अग्नि की तरह, समूल नष्ट करना विद्वानों का कर्तव्य है। यह कार्य तभी सम्भव है जब विद्वान, स्वयं धार्मिक, सत्यप्रिय न्यायप्रिय निपक्ष निःस्वार्थी और शूरवीर तथा पराक्रमी होते हैं। अर्थात् जो लोग वेद शास्त्रों की चर्चा कर सकते हैं, जिनको वेदमंत्र कण्ठस्थ हैं, किन्तु जिनमें अग्नि और दूत के गुण नहीं है, ये लोग विद्वान कहलाने योग्य नहीं हैं, आदर के योग्य भी नहीं हैं। जब विद्वान् शूरवीर नहीं होते, और अधर्म अन्याय, अत्याचार को देखकर भी मौन रहते हैं, तब मुर्ख लोग शूरवीर होजाते हैं, अधर्म अन्याय, अत्याचार की वृद्धि हो जाती है। यह विद्वानों की जीते जो मृत्यु के समान है। वीर गणपतिका रहस्य यही है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि सम्प्रति नपुंसकता

और कायरता, को ही लोग सौजन्यता और नम्रता समझते हैं। इस कारण, नपुंसक और कायर, श्लोकों के पण्ड़ित, वाचाल, जिनकी न वाणी में कोई बल है, न लेखनी में कोई बल किन्तु फिर भी विद्वान माने जाते हैं, सम्मान पाते जाते हैं। वास्तव में इसके ये योग्य नहीं होते। कुछ पण्डित लोग तो महाराज भर्तृहरिजी के शब्दों में —

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातनं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते .... ।

अर्थात्, यह कुत्ते का स्वभाव है कि जो कोई भी उसकी ओर रोटी का टुकड़ा फेंकता है, वह अपनीपूँछ हिलाते हुए उस व्यक्ति के आगे पीछे घूमता है। कभी उसके पाँव चाटताहै, कभी नीचे बैठकर उसकी शकल की ओर, कभी उसके पेट की ओर देखते हुए दीन भावके साथ बैठता है। इतना ही नहीं, दूसरे कुत्तों से ईर्षा भी करता है, उनको पास में से गुज़रने भी नहीं देता। भौंकना शुरु करता है. काटने के लिये दौड़ता है। कुछ पण्डित, जो वास्तव में वाचाल पण्डित, संस्कार पण्डित या लेखन पण्डित हैं, (क्यों कि इस के अतिरिक्त ये और कोई काम नहीं करते) ये भी कुत्ते की तरह ही बर्ताव करते हैं। ये नये नये यजमान और अपने पोषकों की खोज में रहते हैं। और अपने अपने यजमान या पोषकों की चापलूसी करते रहते हैं। दूसरे पण्डितों से ईर्षा करते हैं। उनके दोषों का वर्णन भी करते हैं। इस प्रकार के लोग सम्मान के योग्य नहीं होते। ये लोग पतित हैं। ये दूसरों की क्या भलाई कर सकते हैं। जब से हमारे देशमें विद्वानों का पतन हुआ तब से देश का भी पतन हुआ। ये पण्डित कहते फिरते हैं कि "पुरुषोऽर्थस्य दास:" यानी, आदमी पैसे का गुलाम है। ऐसे लोगों की मनोस्थिति दयनीय होती है।

पूजा के योग्य विद्वान वे ही होते हैं जो उपरोक्त रीति से अग्नि होते हैं, दूत होते हैं ऐसे धार्मिक विद्वानों को ही ब्राह्मण कहते हैं। ब्रह्म

अर्थात् परमात्मा, वेद एवं यज्ञ है। अत: जो लोग परमात्मा का चिन्तन करते हैं, वेद का पठन-पाठन करते हैं और यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हैं, उनको ब्राह्मण कहते हैं। वेद कहता है—
ब्राह्मण एवं पतिर्न राजन्योऽन वैश्य: ।। अथर्ववेद ५।१७।९।।

अर्थात् हमारे स्वामी उपरोक्त प्रकार के विद्वान ब्राह्मण हैं। हम उन्हीं को अपने नेता चुनेंगे, उन्हीं के आदेशों का पालन करेंगे। क्यों कि वे ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। क्षत्रिय या वैश्य हमारे गणनायक बनने योग्य नहीं हैं। ऐतरेय ब्राह्मण भी कहता है कि तद्यत्र वै ब्राह्मण: क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदिहास्मिन् वीरो जायते ।। ८।२।९।।"

अर्थात्, जिस राष्ट्र में क्षत्रियादि वर्णों के लोग विद्वान् ब्राह्मणों के वश में रहते हैं, वह राष्ट्र सुसमृद्ध और वीरपुरुषों से सम्पन्न रहता है। किन्तु जब विद्वान लोग, क्षत्रिय वैश्यादि लोगों के वश में होजाते हैं, तब सब बातें उल्टी हो जाती हैं।

विद्वानों की नैष्कर्मण्यता से देश का पतन :— जिस समय भारत एक वैभव सम्पन्न, और विश्व में सबसे अधिक सभ्य देश माना जाता था उस समय ब्रिटेन एक दरिद्र और असभ्य देश था। लेकिन उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन समृद्धि और सभ्यता के शिखर पर पहुँच गया और भारत पतन की पराकाष्ठा को पहुँच गया। जनता को आशा थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत का भाग्य चक्र बदलेगा। लेकिन ऐसा न होकर, स्थिति पहले से भी अधिक बिगड़ गई है। ऐसा क्यों हुआ? हमारे विद्वान लेखक, पत्रकार एवं प्रवचनकार कभी नेतालोगों को दोषी बताते हैं, कभी शासन प्रणाली को दोषी बताते हैं और कभी राजनैतिक पक्षों को दोषी बताते हैं। ये अपने दोषों को नहीं समझते। आज कल के विद्वान् प्राय: नैष्कर्मण्यता के अवतार हैं। ये लेखनी चलाना और जिह्वा हिलाना ही अपना पुरुषार्थ समझते हैं। स्वाधीनता संग्राम के समय हमारे विद्वान् अपने आदर्शों के लिये, अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करते थे। लेकिन् आज ये 'हार को ही निज गले का हार मानकर' बैठने वालों में से हैं। समाज को, राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करना विद्वानों का धर्म है। किन्तु उपेक्षापूर्ण

मनोवृत्ति के कारण ये पीछे हटते जारहे हैं और धूर्त लोग आगे बढ़ रहे हैं। इसीलिये देश का पतन हो रहा है। मूर्ख और कुटिल व्यक्ति अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिये संघर्ष करते हैं लेकिन विद्वान् न्याय सत्य, धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष करना भी बुरा समझते हैं। फिर हमारी उन्नति के मार्ग में आनेवाले विघ्न कैसे दूर होंगे? भग्न दंतो वीर विघ्नेश, अन्याय, असत्य, अधर्म के विरुद्ध युद्ध करने के लिये विद्वानों को आह्वान देता है और कहता है कि विद्वान् हो भगवान श्री कृष्ण जैसा, विद्वान् हो स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे।

"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे ......" इस ऋग्वेदीय मंत्र में ऐसे ही गणनायक वा राष्ट्रपति का वर्णन है। वह प्रजागणों के पति हैं क्रान्त प्रज्ञ (कवि) है, अत्यन्त प्रशंसनीय गुणों से युक्त है (श्रवस्तम), और हर उत्तम कर्म उसकी प्रेरणा से होता है।

"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे ......" इस यजुर्वेदीय मंत्र में सबसे प्यारा पति (प्रियपति), धनधान्यादि के पति (निधिपति), जिसमें सब उत्तम गुण निवास करते हैं (वसु), और वह प्रजाजनों को, अपने गर्भ के समान सदा सजग रहकर रक्षा करता है, इत्यादि रीति से गणपति का वर्णन किया गया है।

"देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ......(यजुर्वेद ९।३०)
इस मंत्र में भी बताया गया है कि मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल-पराक्रम पुष्टियुक्त, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर, सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके, राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें (देखो, दयानन्द भाष्य)।

इन् सारी बातों से सिद्ध है कि गणेश कहते हैं गणतंत्र में गणाध्यक्ष या राष्ट्रपति को। श्री गणेश महिम्नस्तोत्र में गणेश को "गणाध्यक्षो ज्येष्ठः" बताया गया है। अर्थात् गणेश, सभाध्यक्ष व राष्ट्रपति को कहते हैं जो एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होता है। हाथी का बड़ा सिर विवेक या बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। विवेक के अनुसार कर्म

करना नेताका लक्षण है। इसलिये गणनायक को गजानन कहा गया है। गणेश के बड़े बड़े कान बताते हैं कि जननेता को सब की बातें ध्यान से सुननी चाहिये। किन्तु गणेश का छोटा आवृत मुख बताता है कि नेता बहुत कम बोला करे। ऐसे तो विद्वान हमेशा मितभाषी ही होते हैं। वाक् चापल्य मानसिक दौर्बल्य का संकेत है। ऐसे दुर्बल व्यक्ति के राष्ट्रनेता बनने से बहुत हानि होगी। गणेश की लंबी नाक कुशाग्रबुद्धि अथवा सत्यासत्य की परीक्षा करने में समर्थ बुद्धि का संकेत है। यह निष्पक्षपातपूर्ण न्याय देने के लिये है। पहले राष्ट्रपति या राजा ही मुख्य न्यायाधीश होते थे। (शुक्रनीति ४।५६१) इसके अतिरिक्त नाक प्रतिष्ठा का भी चिन्ह है। स्वाभिमान का संकेत है। जब किसी की प्रतिष्ठा को हानि होती है, तब कहा जाता है कि उसकी नाक कट गयी। नेता प्रतिष्ठित और स्वभिमानी व्यक्ति हो। यह हेरम्ब गणपति का रहस्य है।

गणेश के दो प्रकार के दन्त बताते हैं कि —
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु॥ (मनुस्मृति) अर्थात्, गणनायक राजा के भेद को शत्रु लोग न जान पावे किन्तु, शत्रुओं के भेद को राजा अवश्य जान ले। हाथी के दो प्रकार के दांत होते हैं, एक चबाने के लिये, दूसरे दिखाने के लिये यह कूटनीति का प्रतीक मानाजाता है। पुराणों में एक दन्त भी गणेश को बताया जाता है जो इस बातका प्रतीक है कि नेता को सदैव एक बात ही बोलना चाहिए।

गणेश का टूटा हुआ दांत भी बड़ा महत्वपूर्ण है। यह वीरता का चिन्ह है। "दंतच्छेदो हि नागानां श्लाध्यो गिरिविदारणे", अर्थात् पर्वत से टकराते समय गजराज का जो दांत टूटता है, वह उसकी वीरता का परिचायक बन जाता है। इसलिये यह उसके लिये शोभा दायक माना जाता है। जो लोग जीवन में संघर्ष करते हैं, वे अवश्य चोट भी खाते हैं। जो वीर योद्धा लड़ता है वह अवश्य मार खाता है। जो कायर या डरपोक है, वह संघर्ष नहीं करता है। इसलिये उसके मार खाने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे लोग मौत से पहले कई बार मर जाते हैं। इसलिये जो धर्म के लिये, न्याय के लिये लड़ता है,

उसके लिये चोट खाना, नुकसान उठाना गौरव की बात है। नेता में ये गुण होने चाहिये। गणेश का टूटा हुआ दांत यही बता रहा है।

कहते हैं कि "अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलनम्रताम्। अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद् बहु।।" अर्थात् दूसरों को दुःख दिये बिना, धूर्तों के सामने सिर झुकाये बिना, सन्मार्ग को बिना छोड़े, मनुष्य अपने जीवन में जो भी थोड़ा कुछ प्राप्त करपाता है, वही बहुत है। धूर्तों के सामने सिर झुकाये बिना चलने के लिये मनुष्य को बहुत कष्ट उठाना पडता है। किन्तु, यह कष्ट उठाना सार्थक है। ऐसे कष्ट उठानेवाले विद्वान ही नेता बनने योग्य हैं। अवसरवादी लोग, इसके योग्य नहीं होते।

गणेश का मूषक दो-तीन बातें बता रहा है। मूषक के लिये वेदों में आखु शब्द आया है। आखु शब्द का अर्थ है अच्छी तरह खोदनेवाला। "आक्रम्या वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रूचा त्वम्" (यजुर्वेद ११।१६) इस वेद वाक्य में कहा गया है कि 'मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भ और अग्निविद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें। और जो पृथिवी को खोदनेवाले नौकर चाकर हैं उनको इस विद्या का उपदेश करें' (देखो, दयानन्द भाष्य)। इसलिये गणेश का आखु या मूषक उपरोक्त प्रकार के खोदने वाले और सम्पत्ति की खोज करनेवाले लोगों का प्रतीक है। राजा को चाहिये कि वह ऐसे लोगों को पैदा करे और उनकी रक्षा करे।

मूषक की एक दूसरी बात यह है कि वह हाथी के सामने, एक बिलकुल क्षुद्र प्राणी है। कहते हैं कि, "क्षुद्रोऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसामतीव"।। अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का यह स्वभाव है कि, जब छोटे से छोटे लोग भी उनके पास शरण मांगते हैं, तब उनको ये अपनेपन की भावना से देखते हैं। राजा लोगों में यह गुण होना चाहिये कि भले कितना भी छोटा आदमी क्यों न हो, जब वह शरण मांगता है, रक्षा चाहता है, तो उसको शरण दें, उसकी रक्षा करें। उसको अपनेपन की भावना से देखें। इससे राजा लोगों की

शक्ति बढ़ती है। गणेश और उसका मूषक यही उपदेश देते हैं। इसके अतिरिक्त मूषक का अर्थ चोर भी होता है। उनको बाँधके रखना राजा का कर्तव्य है। कोई कहते हैं कि यह मूषक गुप्तचर विभाग का प्रतीक भी है।

विद्वानों को जनसाधारण के बीचमें विचरना चाहिये :— आज कल के विद्वान प्रायः साधारण जनता के साथ मिलना जुलना, उनके दुःख दर्द की बातें सुनना इत्यादि पसंद नहीं करते। ये श्रेष्ठता ग्रंथिसे पीड़ित रहते हैं। जहाँ कहीं भी लोगों के साथ इनका व्यवहार होता है, वहाँ ये ऐसी उँची बातें करते हैं जो उनके समझ में नहीं आतीं या उनके जीवन के साथ उन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इनके लेखन और भाषणों की भी यही स्थिति है। इसके फलस्वरूप ऐसे विद्वान्, सामान्य जनता से परित्यक्त और अलग होकर रहते हैं। इस प्रकार, बुद्धिजीवियों से सामान्य जनता को कोई लाभ नहीं मिलता। इससे, ऐसे, लोग, जिन्होंने राजनीति या समाज सेवा कार्यों को अपना पेशा बनाया हुआ है, क्षेत्र में आजाते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करलेते हैं। ये सामान्य जनता की बातें कहते हैं। सामान्य जनता के हित चिंतकों के रूप में सामने आजाते हैं। इस प्रकार ये नेता बनजाते हैं और सत्ता व अधिकार उनके पास चला जाता है। फिर विद्वान, इन सत्तारूढ़ नेताओं की कृपा प्राप्त करने के लिये प्रयास करते हैं। इस प्रकार विद्वानों का नैतिक पतन हो जाता है। और जनता स्वार्थी और कुटिल नेताओं के द्वारा शोषित की जाती है। श्री गणेश की मूर्ति कहती है कि विद्वानों को समाज में बड़े होने पर भी मूषक वाहन बनकर, अर्थात् छोटा बनकर, साधारण जनता के बीच में विचरना चाहिये, उनकी बातों को सुनना चाहिये, उनके उद्धार कार्य में भाग लेना चाहिये। तभी तो देश का कल्याण होगा। मूषक एक बहुत छोटा प्राणी है। इसलिये यह छोटे अर्थात् साधारण जनता का भी प्रतीक है। नेतालोगों को ऊपर उठानेवाले, नेताबनानेवाले आखिर सामान्य लोग ही है। मूषक वाहन का यह एक दूसरा रहस्य है।

गणनायक राजा सम्पन्न भी हो, विद्वान भी हो। लक्ष्मी और

सरस्वती समृद्धि और विद्या के प्रतीक हैं। इसलिये गणेश को इनका स्वामी बताया गया है।

गणेश के हाथ राजा की शक्ति के प्रतीक हैं। उसके हाथो में पाश, अंकुश, गदा आदि जो हैं, ये विधान नियम, अधिकार आदि के प्रतीक हैं।

उपरोक्त चर्चा से आपने देखा कि गणपति का एक छोटा रूप, चित्र या उसकी मूर्ति अनेक सूक्ष्मबातों की शिक्षा देती है। लेकिन, यह शिक्षा उनके लिये, जो समझ सकते हैं, जो इस साँकेतिक भाषा को पढना जानते हैं। किन्तु अज्ञानियों के लिये यही भगवान बन गया, और अंधविश्वास, अंधश्रद्धा का आधार बन गया।

चौथा गणपति ऐतिहासिक पुरुष :- महाराज मनु ने कहा है कि, "सर्वेषां तु स नमानी कर्माणि च पृथक पृथक वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥' (मनुस्मृति १/२१)। अर्थात् पहले वेद शब्दों से ही नाम रखने को परम्परा थी। तदनुसार अनेक वैदिक शब्द, नदियों, पर्वतों, नगरों, कर्मकाण्डों संघसंस्थाओं तथा व्यक्तियों के नामों के लिये प्रयुक्त हुए। गणपति शब्द भी वेदों में आया है। उसका अर्थ भी बड़ा सुन्दर है। इसलिये लोगों ने राजा को, गणाध्यक्ष को, गणतंत्र के नेता को भी गणपति कहा है।

बच्चों का नामकरण भी इसी के पीछे कर दिया जाता है। पता नहीं आदि काल से लेकर अब तक कितने गणपति के नाम से प्रसिद्ध हुए, अब कितने गणपति हैं, और कितने आगे होंगे। महाभारत, आदि पर्व में जिस गणेश का उल्लेख आया है वह अवश्य कोई ऐतिहासिक पुरुष होगा। कहा जाता है कि वह मालती नदी के तट पर रहता था। वह महादेव और पार्वती का लड़का था। महादेव बड़े योगी थे, विद्वान थे, पार्वती भी बड़ी विदुषी और

योगिनी थी। ऐसे माता पिता के बच्चे का योगी और विद्वान् होना भी स्वाभाविक था। गणेशगीता नामक एक राजयोग से सम्बन्धित पुस्तक अब भी उपलब्ध है। हो सकता है कि यह पुस्तक इसी गणेश द्वारा लिखी गयी हो। यह शीघ्रलेखन कार्य में प्रवीण था। इसलिये व्यास जी ने इसको स्वरचित महाभारत काव्य को लिपिबद्ध करने के लिये नियुक्त किया था। सम्भव है कि इसके पूर्व भी इसी नाम के अन्य महापुरुषभी हुए हों। लेकिन इनका क्रमबद्ध इतिहास अब उपलब्ध नहीं है। अज्ञानवशात्, उपरोक्त सभी गणेश एक ही माने गये। और विभिन्न गणपतियों से सम्बन्धित बातों को इकट्ठा करके एक खिचड़ी गणपति की कल्पना की गयी है। इसलिये पुराणों में तथा स्तोत्रग्रंथों में जिस गणपति की चर्चा है, वह कौनसा गणपति है, यह समझना कठिन हो गया है। खिचड़ी रोगी के लिये अच्छी है। किन्तु दूषित खिचड़ी हानिकारक है।

गणपति के सम्बन्ध में विद्वानों में नाना प्रकार की भ्रांतियाँ उत्पन्न होने का कारण भी यही खिचडी गणेश है। प्रोफेसर मोनियर विलियम्स को गणेश के शूद्रों के देवता होने की भ्रांति हुई। अलिस गेटी को गणेश द्रविडों के देवता होने की भ्रांति हुई। डॉ. सम्पूर्णानन्द जी को भी लगा कि गणेश प्रारम्भ में द्रविड़ों का देवता था, बाद में आर्यो ने भी उसको स्वीकार कर लिया है।

संत ज्ञानेश्वर और संत तुकाराम ने कहा है कि यह गजानन गणेश की आकृति, ओंकार की कलात्मक लिपि है। अ, उ, और म-कार को मिलाकर ओम बनता है। ॐ इन तीन वर्णों में ब्रह्म, विष्णु और महादेव, ये तीनों देव प्रतीत हो जाते हैं। संत ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी के प्रारम्भ में इस ओंकार गणेश का सुन्दर अर्थ विवरण दिया है। आपने कहा है कि गणेश का टूटा हुआ दांत वैदिक आस्तिकवादके सामने स्वयं खण्डित हुआ बौद्धमत है। इससे लगता है कि गजानन गणेश की उत्पत्ति बौद्धमत प्रचार से पूर्व नहीं हो सकती। एक दूसरी बात जो ज्ञानेश्वर महाराज ने लिखी है वह बड़ी महत्वपूर्ण है —

हे शब्द ब्रह्म अशेष । तेचि मूर्ति सुरेख ।।
जेथ वर्णवपु निर्दोष । मिरवत असे ।।१।।
स्मृति तेचि अवेव । देखा आंगीक भाव ।
तेथ लावण्याची ठेव अर्थशोभा ।।२।।
देखा षड्दशनें म्हणिपति । तेचि भुजांची आकृती ।
म्हणौनि विसंवादें धरती । आयुधें हातीं ।। ३ ।।
तरी तर्कु तेचि फरशु । नीति भेदु अंकुशु ।
वेदान्तु तो महारसु । मोदकु मिरवे ।। ४ ।।
एके हाती दंतु । जो स्वभावत खाण्डितु ।
ते बौद्धमत संकेतु । वार्तिकाचा ।।५।।
मज अवगमलिया दोनी । मीमांसा श्रवणस्थानीं ।
बोधमदामृत सुनी । अली सेवती ।।६।।
(ज्ञानेश्वरी, १।३,४,१०,११,१२,१६)

अर्थात, गणेश की मूर्ति, शब्द ब्रह्म वेद का प्रतीकात्मक स्वरूप है। गणेश के अवयव स्मृतिग्रंथ हैं। उसके छ: भुजायें छ: दर्शनों के संकेत है। उसके हाथ में जो फरशु है, वह तर्क शास्त्र है। अंकुश, नीति शास्त्र है। मोदक वेदान्त है। खण्डित दांत, बौद्धमत है। दो कान मीमांसा शास्त्र हैं। उसके कानों के पास जो भौंरें घूम रहे हैं, ये विद्वत् गण हैं, जो उक्त शास्त्रों के अध्ययन से आनन्द का मधु पान कर रहे हैं।

इस विवरण से लगता है कि गणेश की यह मूर्ति वेदों का महत्व दर्शानेवाला एक प्रतीक भी है। तो गणेश के भक्तों को चाहिये कि वे वेद शास्त्र पढ़ें। विद्वान बनें। किन्तु ये ऐसा कुछ-भी न करके, गणेश की मूर्ति या उसके चित्र को ही, भगवान् मानकर उसकी पूजा करते हैं उसकी आरती उतारते हैं और गाते हैं —

सुखकर्ता दु:खहर्ता वार्ता विघ्नाची ।
नुरवी पुरवी प्रेम कृपा जयाची ।।
सर्वांगीं सुंदर उटी शेंदुराची।
कंठी शोभे माळ मुक्ताफळांची ।।१।।
जय देव जय देव जय मंगलमूर्ति ।
दर्शनमात्रे मनकामना पूरती ।। इत्यादि इत्यादि ।

ये अल्पज्ञ आस्तिक जन जिनमें पढ़े लिखे भी हैं, विश्वास करते हैं कि गणेश की यह मूर्ति, जिसका रहस्य इनको पता नहीं, इनके दु:खों का नाश करेगी और सुख देगी। केवल दर्शन मात्र से ही उनकी सब मनोकामनायें पूर्ण होंगी। ईसाई पादरी भी कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ, तुम्हारे सब पाप क्षमा कर दिये जायेंगे; माहिम के चर्च पर हर बुधवार को जाओ, तुम्हारी सब मनोकामनायें पूर्ण होंगी। और हमारे पौराणिक पण्डित लोग कहते हैं कि गणपतिकी मंगलमूर्ति का दर्शन करो, तुम्हारी सब कामनायें पूर्ण होंगी। लगता है कि ये लोग अंधविश्वास फैलाने में एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे हैं। उनलोगों की मानसिक अवस्था सचमुच दयनीय होगी जो इसे धार्मिक कार्य समझते हैं।

उपसंहार

श्रावण या भाद्रपद से लेकर पुष्य या माघ तक साढ़े चार मास विशेषरूप से वेदाध्ययन के लिये सुरक्षित रखने की शास्त्रविधि है (द्रष्टव्य: मनुस्मृति ४।९५,९६)। इसके अनुसार चातुर्मास्य व्रताचरण की परम्परा हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से चल पड़ी है। इन दिनों में, प्राय: किसान कृषि के कार्य से निवृत्त हो जाते हैं, वैश्य भी अपने अपने घरों में ही रहते हैं, साधु सन्यासी या वानप्रस्थी भी वर्षा के कारण भ्रमण नहीं कर सकते। इसलिये यह समय स्वाध्याय के लिये अत्युपयुक्त माना जाता है। प्रतिवर्ष वेदों के स्वाध्याय करने से विद्वानों को मंत्रो के नये नये अर्थ प्रकट हो जाते हैं। उनका वेद ज्ञान दृढ़ हो जाता है। चातुर्मास्य के समय प्रवचनादि के द्वारा इस ज्ञान का प्रचार हो जाता है। नये लोग भी वैदिक धर्म में दीक्षित हो जाते हैं। सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्य अनेक समस्याओं की चर्चा करने, और समाधान ढूंढ़ने के लिये यह बहुत अनुकूल समय है। इसलिये विद्या की वृद्धि और प्रचार की दृष्टि से इस समय का बड़ा महत्व है। संत ज्ञानेश्वर महाराज ने श्री गणेश की मूर्ति में जिस शब्द-ब्रह्म ओंकार और वेद की महिमा के संकेत को देखा है, वह उचित ही लगता है। भाद्रपद मासारम्भ में नव सस्येष्टि यज्ञ का उत्सव भी इस ऋतु के साथ जुड़ा

हुआ है । इससे श्रीगणेश और यज्ञेश्वर का सम्बन्ध भी ठीक ही लगता है । यज्ञ को निमित्त करके लोग प्रेम के साथ एक दूसरे से मिलते हैं । गणेशोत्सव के साथ यह परम्परा भी जुड़ी हुई है। सार्वजनिक गणेशोत्सव का सच्चा स्वरूप सार्वजनिक महायज्ञ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता । ऋतुओं के संधिकाल में प्रायः वातावरण में रोगाणु उत्पन्न होते हैं । प्रकृति में विषमता आजाती है । इसके दुष्परिणामों से बचने का एक मात्र उपाय है, यज्ञ । इस यज्ञ में ऋतुओं के अनुसार, पर्याप्त मात्रा में सामग्री और घृत की आहुतियाँ पड़ने से अपेक्षित परिणाम निकलता है। रोगाणुओं को नष्ट करने, वायु और जल प्रदूषण को रोकने के लिये जिन कीटनाशक रसायनिक द्रव्यों का इन दिनों प्रयोग हो रहा हैं, इसके दुष्परिणाम अब सामने आने लगे हैं । हम अपने अन्न-जल और प्राणवायु के साथ विष का सेवन कर रहे हैं । यह विष, इन कीटनाशक दवाओं के कारण अधिक फैला है । इस के कारण नये नये रोग भी उत्पन्न हो रहे हैं । इन दवाओं पर और इनके प्रयोग से उत्पन्न होनेवाले रोगों के उपचार पर यज्ञ से अधिक धन का व्यय हो रहा है । घृत विषनाशक है । इसको अग्नि में डालने से इसकी शक्ति बहुत बढ़ती है इसलिये घीके खाने की अपेक्षा हवन में डालने से अधिक लाभ माना जाता है । इस के साथ हवनसामग्री डालनेसे मलेरिया आदि रोग दूर हो जाते हैं । इस यज्ञ से मनुष्य के श्वासकोश और मस्तिष्क पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है । अतः यह यज्ञ की प्रक्रिया बहुतलाभदायक है । अथर्व वेद (काण्ड ६, सूक्त १०१, मंत्र २) में राजा के लिये ब्रह्मणस्पति शब्द आया है । यह गणपति का भी विशेषण है । अतः श्री गणेश के इस सांकेतिक रूप में राजधर्म के कुछ मुख्य सिद्धान्त भी समाविष्ट हैं । 'प्रजापतिर्वै जमदग्निः सोऽश्वमेधः (शतपथ ब्राह्मण १३।२।२।१४)' इस आर्ष वाक्य के अनुसार श्रीगणेश जिसको हमने अग्नि के प्रतीक के रूप में देखा, प्रजापति राजा का प्रतीक भी है जो एक शूर, वीर और धार्मिक विद्वान है । उसके अंकुश प्रजा को नियंत्रण में रखने, परशु बुराइयों को जड़ से काट डालने गदा अधिकार, पाश धर्म या कानून, तथा कमल पवित्रता और निर्लिप्तता के द्योतक हैं । श्री गणेशपुराण में आनेवाला गणेश के भिन्न

भिन्न युगों के भिन्न भिन्न रूप का वर्णन सम्भवतः उसके काल्पनिक चित्र का इतिहास को बताता है । इसको वास्तविक सत्य मानना भूल है । श्रद्धा और भक्ति सत्य-ज्ञान पर अवलम्बित हैं । मनुष्यकृत इस काल्पनिक मूर्ति पर ईश्वर की कल्पना करके इस जड़ प्रतिमा की पूजा करना सत्य-ज्ञान के विरुद्ध है । अतः अंधश्रद्धा है । अंधश्रद्धा से अनर्थ के अतिरिक्त और कोई भी लाभ नहीं । स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में हिन्दुओं में एकता की भावना उत्पन्न करने की दृष्टि से स्व. बाल गंगाधर तिलक जी ने जब गणेशोत्सव को चुना, और इस कारण जो मूर्तिपूजा का अधिक जोर से प्रचार हुआ, विशेष रूप से महाराष्ट्र राज्य में, तब सम्भवतः उन्होंने इस बात की कल्पना नहीं की होगी, कि इससे कितना अनर्थ होगा । प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये मिट्टी के विग्रह बनाने में और उसको सजाने में बरबाद होते हैं । लोगों का समय भी इस बिलकुल निरर्थक अधार्मिक कार्य में नष्ट होता है । असामाजिक तत्व इसका लाभ उठाते हैं । बंबई नगर में ये गली गली में गणेश की दुकान लगाते हैं, चंदा इकट्ठा करते हैं, अश्लील फिल्मी गाने बजाते हैं । दारु पीकर नाचते हैं, लड़कियों को छेड़ते हैं, आपस में मार पीट भी कर लेते हैं । ये सारी बातें हमारे धर्म और हमारी संस्कृति के विरोधी हैं। कुछ भी हो,

> "प्रयत्नेनैव सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः
> न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः ।।"

अर्थात्, केवल कामना करने से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने आप नहीं आजाते । कार्यसिद्धि के लिये प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है । सिद्धिविनायक हमारे अन्दर ही है वह है हमारा पुरुषार्थ । परमेश्वर की कृपा से हम अपने अपने कार्यों में सफल होते हैं । परमेश्वर की कृपा प्राप्त करनेका उपाय, उसकी उपासना, उसके आदेशों का पालन करना, उसकी प्रजा के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करना है । इन सब बातों को ठीक ठीक समझने के लिये लोगों को ईश्वरीय ज्ञान वेद पढना और वेदों के विद्वानों के पास जाकर प्रवचनादि सुनना अत्यावश्यक है ।

वास्तव में गणपति की पूजा, परमात्मा की उपासना, उसके आदेशों का पालन करना है; अग्निगुण सम्पन्न विद्वान् ब्राह्मणों का आदर करना है; उनके हाथों में राष्ट्र का भार सौंपना है; उन्हीं लोगों को राष्ट्र के कर्णधार चुनना है; यज्ञ करना है और वेद पढ़ना हैं। जिस दिन हमारे हिन्दू भाईलोग गणपति और उसकी पूजा के इस रहस्य को समझेंगे और तदनुसार कर्म करेंगे उस दिन हमारे राष्ट्र में ऋद्धि और सिद्धि दोनों स्थापित होंगी; हमारे सब पाप यानी दोष नष्ट होंगे और हमारी सब मनोकामनायें भी अवश्य पूर्ण होंगी।

[श्री गणेश के रहस्य के सम्बन्ध में मेरे पास इस समय एक बृहद्ग्रंथ की सामग्री संग्रहीत है। यहाँ उसका केवल संक्षिप्त रूप ही प्रस्तुत है। आशा है कि शीघ्र ही उस बृहद्ग्रंथ को भी स्वाध्याय प्रेमी जनता के सामने प्रस्तुत कर सकूँगा – **लेखक**]

——— o ———

प्रकाशक :
विद्यार्य सभा, मुम्बई
१ कलेक्टर कॉलोनी, माहुल रोड,
मुम्बई–४०० ०७४
ई. सन् १९८१

मुद्रक :
पुनीत मुद्रण, २२२, तोदी इन्डस्ट्रियल एस्टेट
ना. म. जोशी मार्ग, बम्बई–४०० ०११.
फोन : ८९९८९८